अध्याय-3

शोध के निष्कर्ष

3.1 परिचय

आदि शंकराचार्य का जीवन परिचय

आदि शंकराचार्य जन्म नाम: शंकर, जन्म: 788 ई. - मृत्यु: 820 ई.) अद्वैत वेदान्त के प्रणेता, संस्कृत के विद्वान, उपनिषद व्याख्याता और हिन्दू धर्म प्रचारक थे। हिन्दू धार्मिक मान्यता के अनुसार इनको भगवान शंकर का अवतार माना जाता है।

आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व दक्षिण भारत में केरल प्रान्त के कालटी नामक गांव में पिता शिवगुरु और माता आर्याम्बा के यहां इन दिव्य बालक का जन्म हुआ था। इन्होंने लगभग पूरे भारत की यात्रा की और इनके जीवन का अधिकांश भाग उत्तर भारत में बीता। चार पीठों (मठ) की स्थापना करना इनका मुख्य रूप से उल्लेखनीय कार्य रहा, जो आज भी मौजूद है। शंकराचार्य को भारत के ही नहीं अपितु सारे संसार के उच्चतम दार्शनिकों में महत्व का स्थान प्राप्त है। उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, किन्तु उनका दर्शन विशेष रूप से उनके तीन भाष्यों में, जो उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और गीता पर हैं, मिलता है। गीता और ब्रह्मसूत्र पर अन्य आचार्यों के भी भाष्य हैं, परन्तु उपनिषदों पर समन्वयात्मक भाष्य जैसा शंकराचार्य का है, वैसा अन्य किसी का नहीं है।

उपनिषद (रचनाकाल 1000 से 300 ई.पू. लगभग)[1] कुल संख्या 108। भारत का सर्वोच्च मान्यता प्राप्त विभिन्न दर्शनों का संग्रह है। इसे वेदांत भी कहा जाता है। उपनिषद भारत के अनेक दार्शनिकों, जिन्हें ऋषि या मुनि कहा गया है, के अनेक वर्षों के गम्भीर चिंतन-मनन का परिणाम है। उपनिषदों को आधार मानकर और इनके दर्शन को अपनी भाषा में रूपांतरित कर विश्व के अनेक धर्मों और विचारधाराओं का जन्म हुआ। उपलब्ध उपनिषद-ग्रन्थों की संख्या में से ईशादि 10 उपनिषद सर्वमान्य हैं। उपनिषदों की

कुल संख्या 108 है। प्रमुख उपनिषद हैं- ईश, केन, कठ, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, श्वेताश्वतर, बृहदारण्यक, कौषीतकि, मुण्डक, प्रश्न, मैत्राणीय आदि। आदि शंकराचार्य ने जिन 10 उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है, उनको प्रमाणिक माना गया है।

यदि एक शिक्षक के रूप में में आदि शंकराचार्य का बखान करना चाहूंगी तो भी श्रेष्ठ प्रयास नहीं कर सकूंगी परन्तु अभिव्यक्ति में यह जरूर कहा सकती हूं,कि शंकराचार्य जो शिक्षा अपने भाष्यो के माध्यम से न केवल भारत वर्ष के गठन हेतु अपितु मानवता धर्म को आधारभूत संरचना मानकर जन चेतना हेतु अब तक का सर्वश्रेष्ठ सफल प्रयोग आदि शंकराचार्य द्वारा किया गया है। उनके द्वारा दिया गया "अद्वैत सिद्धांत" दर्शन ही केवल जान कर, सुनकर,समझ कर यदि व्यवहार में ले आया जाएं तो यही सबसे बड़ी संपत्ति के रूप में स्थापित कर म कर सम्पूर्ण मानव जाति को "वासुधैव कुटुमबकम"के उत्तम संकल्पना के स्वप्न को साकार करना बहुत आसान होगा। शिक्षा ही एक ऐसा उपकरण है जो जमीनी स्तर पर परिवर्तन लाने में सक्षम है है,जब हमारी समाजिक स्थिति उतनी अच्छी नहीं थी, जहां हर कोई अपने समुदाय को अपने संप्रदाय को ही श्रेष्ठ दिखाने का प्रयास कर रहा था स्वयं को उच्च और अन्य को नि निम्न कोटिम्न कोटि साबित करने में ही संघर्षरत था, वहीं दूसरी ओर विभिन्न कुरीतियों में समाज लिप्त था इसी भीषण स्थिति में भी आदि शंकराचार्य ने अपने लेखन और वक्तव्य माध्यम से पूरा भारत वर्ष एक साथ जुड़ा आदि शंकराचार्य के प्रयासों का परिणाम है। वैदिक शिक्षा का अंतिम उद्देश्य आत्मज्ञान और आत्म साक्षात्कार ही था और शंकराचार्य जी ने भी आत्म के द्वारा परम आत्मको जानने के मार्ग दिखाएं हैं।आदि शंकर (संस्कृत: आदिशङ्कराचार्यः) ये भारत के एक महान दार्शनिक एवं धर्मप्रवर्तक थे। उन्होंने अद्वैत वेदान्त को ठोस आधार प्रदान किया। भगवद्गीता, उपनिषदों और वेदांतसूत्रों पर लिखी हुई इनकी टीकाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने सांख्य दर्शन का प्रधानकारणवाद और मीमांसा दर्शन के ज्ञान-कर्मसमुच्चयवाद का खण्डन किया। इन्होंने

भारतवर्ष में चार कोनों में चार मठों की स्थापना की थी जो अभी तक बहुत प्रसिद्ध और पवित्र माने जाते हैं और जिन पर आसीन संन्यासी 'शंकराचार्य' कहे जाते हैं। वे चारों स्थान ये हैं- (१) ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रम, (२) श्रृंगेरी पीठ, (३) द्वारिका शारदा पीठ और (४) पुरी गोवर्धन पीठ। इन्होंने अनेक विधर्मियों को भी अपने धर्म में दीक्षित किया था। ये शंकर के अवतार माने जाते हैं। इन्होंने ब्रह्मसूत्रों की बड़ी ही विशद और रोचक व्याख्या की है।

आदि शंकराचार्य के जीवन की अद्भुत घटनाओं से शिक्षा

- कम उम्र में अद्भुत ज्ञान एवं योग्यताएं
- ज्ञान की खोज में संन्यास की ओर गति।
- पांव पांव चल कर भारत के विभिन्न हिस्सों की यात्रा।
- गुरु से मिलन
- अद्वैत वेदांत दर्शन
- विभिन्न उपनिषदों के भाष्य रचना
- समाजिक कुरीतियों और आध्यात्मिक पाखंड का विरोध किया
- राष्ट्रीय एकता की स्थापना हेतु चार मठों का निर्माण किया।
- मणडन मिश्र की पत्नी से शास्त्रार्थ की स्वीकृति और यह संदेश कि स्त्री पुरुष समानता से ही समाज का उत्थान संभव है।

3.2 आदि शंकराचार्य द्वारा रचित 10भाष्योंका अध्ययन

उपनिषदों ने आत्मनिरीक्षण का मार्ग बताया है:-

1. ईशाउपनिषद

   जीवन जीने के मार्ग

अद्भुत कलेवर वाले इस उपनिषद् में ईश्वर के सर्वनिर्माता होने की बात है सारे ब्रह्मांड के मालिक को इंगित किया गया है, सात्विक जीवनशैली की बात कही गई है कि दूसरे के धन पर दृष्टि मत डालो।

इस जगत् में रहते हुए निःसंङगभाव से जीवनयापन करने को बताया गया है। इसमें 'असुर्या' नामक लोक की बात आती है – असुर्या मतलब कि सूर्य से रहित लोक। वह लोक जहाँ सूर्य नहीं पहुँच पाता, घने, काले अंधकार से भरा हुआ अन्चतम लोक, अर्थात् गर्भलोक।

कहा गया है कि जो लोग आत्म को, अपने 'स्व' को नहीं पहचानते हैं, आत्मा को झुठला देते हैं, नकार देते हैं और इसी अस्वीकार तले पूरा जीवन बिताते हैं उन्हें मृत्यु के पश्चात् उसी अन्धतम लोक यानि कि असुर्या नामक लोक में जाना पड़ता है अर्थात् गर्भवास करना पड़ता है, फिर से जन्म लेना पड़ता है।

इस प्रकार इस उपनिषद् में एक ओर ईश्वर को सर्वनिर्माता मानकर स्वयं को निमित्त मात्र बनकर जीवन जीने का इशारा करता है, जो दूसरी ओर आत्म को न भूलने की इंगित करता है।

इसके बाद आत्म को निरुपित करने का तथ्य आता है कि 'वह' अचल है साथ ही मन से भी ज्यादा तीव्रगामी है। यह आत्म (ब्रह्म) सभी इंद्रियों से तेज भागने वाला है।

इस उपनिषद् में आत्म/ब्रह्म को 'मातरिज्वा' नाम से इंगित किया गया है, जो कि सभी कार्यकलापों को वहन करने वाला, उन्हें सम्बल देने वाला है।

'आत्म' के ब्रह्म के गुणों को बताने के क्रम में यहाँ यह बताया गया है कि वह एक साथ, एक ही समय में भ्रमणशील है, साथ ही अभ्रमणशील भी। वह पास है और दूर भी। यहाँ उसे कई विशेषणों द्वारा इंगित किया गया है – कि वह सर्वव्यापी, अशरीरी, सर्वज्ञ, स्वजन्मा और मन का शासक है।

इस उपनिषद् में विद्या एवं अविद्या दोनों की बात की गई है उनके अलग-अलग किस्म के गुणों को बताया गया है साथ ही विद्या एवं अविद्या दोनों की उपासना को वर्जित किया गया है – यहाँ यह साफ-साफ कहा गया है कि विद्या एवं अविद्या दोनों की (या एक की मा) उपासना करने वाले घने अंधकार में जाकर गिरते हैं साकार की प्रकृति की उपासना को भी यहाँ वर्जित माना गया है लेकिन हाँ विद्या एवं अविद्या को एक साथ जान लेने वाला, अविद्या को समझकर विद्या द्वारा अनुष्ठानित होकर मृत्यु को पार कर लेता है, वह मृत्यु को जीतकर अमृतत्व का उपभोग करता है यह स्वीकारोक्ति यहाँ है।

इसमें सम्भूति एवं नाशवान् दोनों को भलीभाँति समझ कर अविनाशी तत्व प्राप्ति एवं अमृत तत्व के उपभोग की बात कही गई है। इस उपनिषद् के अंतिम श्लोकों में बड़े ही सुंदर उपमान आते हैं – ब्रह्म के मुख को सुवर्ण पात्र से टंके होने की बात साथ ही सूर्य से पोषण करने वाले से प्रार्थना की। सुवर्णपात्र से टंके हुए उस आत्म के मुख को अनावृत कर दिया जाए ताकि उपासक समझ सके, महसूस कर सके कवह स्वयं ही ब्रह्मरूप है और अंतिम श्लोकों में किए गए सभी कर्मों को मन के द्वारा याद किए जाने की बात आती है और अग्नि से प्रार्थना कि पंञ्चभौतिक शरीर के राख में परिवर्तित हो जाने पर वह उसे दिव्य पथ से चरम गंतव्य की ओर उन्मुख कर दे।

2. केनउपनिषद

"किसके द्वारा"

केनोपनिषद प्रमुख 11 उपनिषदों में से द्वितीय स्थान रखता है। ऐसा मेरा मानना है की जानने की इच्छा या जिज्ञासा, जब जिज्ञासा उत्पन्न होगी तभी निश्चित ही उपनिषद पैदा होगा उपनिषद का अर्थ होता है साथ में बैठकर श्रुति करना।

केनोपनिषद की जितनी मैं समझ विकसित कर पाई उसके अनुसार केनोपनिषद स्त्रोत की तरफ इशारा करता है ना कि उसकी व्याख्या ही करता है स्त्रोत वह है जो कभी समाप्त नहीं होता स्त्रोत से आशय ब्रह्म से है ब्रह्म वह है जो सत्य है और सत्य ही स्त्रोत है। इसलिए कहा जाता है किसी अमुक व्यक्ति का देहांत हो गया। इससे आशा यह है कि शरीर का अंत हुआ है स्त्रोत का नहीं। उपनिषदों को पढ़ा नहीं जा सकता बल्कि दिया जाना चाहिए मन इस प्रकार हो जिसमें जानने की इच्छा हो मन कहां से आया क्या मन का भी कोई मन है? क्या आंखों की भी कोई आंख होती है? कानों के भी कान होते हैं? जवान की भी जवान होती है प्राण के भी क्या प्राण होते?

केनोपनिषद पढ़ने के बाद कुछ समझ विकसित हुई जिस प्रकार झरना निरंतर रहता रहता है, सूर्य निरंतर अपनी प्रचंड प्रकाश निर्मित करता है परंतु उसका स्त्रोत समाप्त नहीं होता।

अगर सरल शब्दों में केनोपनिषद को समझाया जा सके तो जानने की प्रबल उत्कंठा का होना। केनोपनिषद स्वीकार नहीं करता बल्कि यह निरंतर जानने की प्रक्रिया का संकेत है उदाहरण के रूप में आज भी ब्लैक होल ब्रह्मांड की विभिन्न परतें खुलती ही चली जा रही हैं लेकिन यह ना तो आखरी प्रश्न है और ना ही आखरी उत्तर है। मन किसे नहीं जान सकता है? आंखें जिसे नहीं देख सकती परंतु देखने के पीछे जो शक्ति हमें प्राप्त होती है वही ब्रह्म है। जिसके बारे में हमारा मन चिंतन नहीं कर सकता पर उस् मन का जो स्त्रोत है वही ब्रह्म है। जिसके बारे में हमारी जबान कह नहीं सकती

3. प्रशनउपनिषद

प्रश्नोपनिषद अथर्ववेदीय शाखा के अन्तर्गत एक उपनिषद है। यह उपनिषद संस्कृत भाषा में लिखित है। इसके रचियता वैदिक काल के ऋषियों को माना जाता है परन्तु मुख्यत वेदव्यास जी को कई उपनिषदों का लेखक माना जाता है। स उपनिषद् के प्रवक्ता आचार्य पिप्पलाद थे जो कदाचित् पीपल के गोदे खाकर जीते थे।

सुकेशा, सत्यकाम, सौर्यायणि गार्ग्य, कौसल्य, भार्गव और कबंधी, इन छह ब्रह्मजिज्ञासुओं ने इनसे ब्रह्मनिरूपण की अभ्यर्थना करने के उपरांत उसे हृदयंगम करने की पात्रता के लिये आचार्य के आदेश पर वर्ष पर्यंत ब्रह्मचर्यपूर्वक तपस्या करके पृथक्-पृथक् एक एक प्रश्न किया। पिप्पलाद के सविस्तार उत्तरों के सहित इन छह प्रश्नों के नाम का यह उपनिषद का पूरक बतलाया जाता है। इसके प्रथम तीन प्रश्न अपरा विद्या विषयक तथा शेष परा विद्या संबंधी हैं।

प्रथम प्रश्न प्रजापति के रथि और प्राण की ओर उनसे सृष्टि की उत्पत्ति बतलाकर आचार्य ने द्वितीय प्रश्न में प्राण के स्वरूप का निरूपण किया है और समझाया है कि वह स्थूल देह का प्रकाशक धारयिता एवं सब इंद्रियों से श्रेष्ठ है। तीसरे प्रश्न में प्राण की उत्पत्ति तथा स्थिति का निरूपण करके पिप्पलाद ने कहा है कि मरणकाल में मनुष्य का जैसा संकल्प होता है उसके अनुसार प्राण ही उसे विभिन्न लोकों में ले जाता है।

चौथे प्रश्न में पिप्पलाद ने यह निर्देश किया है कि स्वप्नावस्था में श्रोत्रादि इंद्रियों के मन मे लय हो जाने पर प्राण जाग्रत रहता है तथा सुषुप्ति अवस्था में मन का आत्मा में लय हो जाता है। वही द्रष्टा, श्रोता, मंता, विज्ञाता इत्यादि है जो अक्षर

ब्रह्म का सोपाधिक स्वरूप है। इसका ज्ञान होने पर मनुष्य स्वयं सर्वज्ञ, सर्वस्वरूप, परम अक्षर हो जाता है।

पाँचवे प्रश्न में ओंकार में ब्रह्म की एकनिष्ठ उपासना के रहस्य में बतलाया गया है कि उसकी प्रत्येक मात्रा की उपासना सद्गति प्रदायिनी है एवं सपूर्ण ॐ का एकनिष्ठ उपासक कैचुल निर्मुक्त सर्प की तरह पापों से नियुक्त होकर अंत में परात्पर पुरुष का साक्षात्कार करता है।

अंतिम छठे प्रश्न में आचार्य पिप्पलाद ने दिखाया है कि इसी शरीर के हृदय पुंडरीकांश में सोलहकलात्मक पुरुष का वास है। ब्रह्म की इच्छा, एवं उसी से प्राण, उससे श्रद्धा, आकाश, वाय, तेज, जल, पृथिवी, इंद्रियाँ, मन और अन्न, अन्न से वीर्य, तप, मंत्र, कर्म, लोक और नाम उत्पन्न हुए हैं जा उसकी सोलह कलाएँ और सोपाधिक स्वरूप हैं। सच्चा ब्रह्म निर्विशेष, अद्वय और विशुद्ध है। नदियाँ समुद्र में मिलकर जैसे अपने नाम रूप का उसी में लय कर देती हैं पुरुष भी ब्रह्म के सच्चे स्वरूप को पहचानकर नामरूपात्मक इन कलाओं से मुक्त होकर निष्कल तथा अमर हो जाता है। इस निरूपण की व्याख्या में शंकराचार्य ने अपने भाष्य में विनाशवाद, शून्यवाद, न्याय सांख्य एवं लौकायितकों का यथास्थान विशद खंडन किया है।

4. मुण्डक उपनिषद

मुंडकोपनिषद् दो-दो खंडों के तीन मुंडकों में, अथर्ववेद के मंत्रभाग के अंतर्गत आता है। इसमें पदार्थ और ब्रह्म-विद्या का विवेचन है, आत्मा-परमात्मा की तुलना और समता का भी वर्णन है।

5. ममाण्डूक्योपनिषद

अथर्ववेदीय शाखा के अन्तर्गत एक उपनिषद है। यह उपनिषद संस्कृत भाषा में लिखित है। इसके रचयिता वैदिक काल के ऋषियों को माना जाता है। इसमें आत्मा या चेतना के चार अवस्थाओं का वर्णन मिलता है - जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। प्रथम दस उपनिषदों में समाविष्ट केवल बारह मंत्रों की यह उपनिषद् उनमें आकार की दृष्टि से सब से छोटी है किंतु महत्त्व के विचार से इसका स्थान ऊँचा है, क्योंकि बिना वाग्विस्तार के आध्यात्मिक विद्या का नवनीत सूत्र रूप में इन मंत्रों में भर दिया गया है।

इस उपनिषद् में ॐ की मात्राओं की विलक्षण व्याख्या करके जीव और विश्व की ब्रह्म से उत्पत्ति और लय एवं तीनों का तादात्म्य अथवा अभेद प्रतिपादित हुआ है। इसके अलावे वैश्वानर शब्द का विवरण मिलता है जो अन्य ग्रंथों में भी प्रयुक्त है।

6. तैत्तिरीयोपनिषद

कृष्ण यजुर्वेद शाखा का यह उपनिषद तैत्तिरीय आरण्यक का एक भाग है। इस आरण्यक के सातवें, आठवें और नौवें अध्यायों को ही उपनिषद की मान्यता प्राप्त हैं इस उपनिषद के रचयिता तैत्तिरि ऋषि थे। इसमें तीन वल्लियां- 'शिक्षावल्ली,' 'ब्रह्मानन्दवल्ली' और 'भृगुवल्ली' हैं। इन तीन वल्लियों को क्रमशः बारह, नौ तथ दस अनुवाकों में विभाजित किया गया है। जो साधक 'ज्ञान,' 'कर्म' और उपासना' के द्वारा इस भवसागर से पार उतर कर मोक्ष की प्राप्ति करता है अथवा योगिक-साधना के द्वारा 'ब्रह्म' के तीन 'वैश्वानर', 'तेजस' और 'प्रज्ञान' स्वरूपों को जान पाता है और सच्चिदानन्द स्वरूप में अवगाहन करता है, वही 'तित्तिरि' है। वही मोक्ष का अधिकारी है।

इस उपनिषद द्वारा तैत्तिरि ऋषि ने अपने पूर्ववर्ती आचार्य सत्यवचा राथीतर, तपोनिष्ठ पौरूशिष्टि, नाकमोद्गल्य और त्रिशंकु आदि आचार्यों के उपदेशों को मान्यता देकर अपनी सौजन्यता का विनम्र परिचय दिया है। इसे तृतीय वल्ली में भृगु-वारुणि संवाद के रूप में प्रस्तुत किया है।

7. एतरेय उपनिषद

आदिशंकराचार्य ने इसके ऊपर जो भाष्य लिखा है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसके उपोद्घात-भाष्य में उन्होंने मोक्ष के हेतु का निर्णय करते हुए कर्म और कर्मसमुच्चित ज्ञानका निराकरण कर केवल ज्ञानको ही उसका एकमात्र साधन बतलाता है। फिर ज्ञानके अधिकार का निर्णय किया है और बड़े समारोह के साथ कर्मकाण्डी के अधिकार का निराकरण करते हुए संन्यासी को ही उसका अधिकारी ठहराया है। वहां वे कहते हैं कि 'गृहस्थाश्रम्' अपने गृहविशेषके परिग्रह का नाम है और यह कामनाओं के रहते हुए ही हो सकता है तथा ज्ञानी में कामनाओं का सर्वथा अभाव होता है। इसलिए यदि किसीप्रकार चित्तशुद्धि हो जाने से किसी को गृहस्थाश्रम में ही ज्ञान हो जाय तो भी कामनाशून्य हो जाने से अपने गृहविशेष के परिग्रह का अभाव हो जाने के कारण उसे स्वतः ही भिक्षुकत्व की प्राप्ति हो जायगी। अचार्य का मत है कि 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति' आदि श्रुतियाँ केवल अज्ञानियों के लिये हैं, बोधवान् के लिये इस प्रकार की कोई विधि नहीं की जा सकती।

इस प्रकार विद्वान् के लिये पारिव्राज्य की अनिवार्यता दिखलाकर वे जिज्ञासु के लिये भी उनकी अवश्यकर्तव्यता का विधान करते है। इसके लिये उन्होंने 'शान्तों दान्त उपरतस्तितिक्षुः' 'अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसंघजुष्टम्' 'कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' आदि श्रुति और 'ज्ञात्वा नैष्कर्म्यमाचरेत्' 'ब्रह्माश्रमपदे वसेत्' आदि स्मृतियों को उद्धृत किया है। ब्रह्मजिज्ञासु ब्रह्मचारी के लिये भी चतुर्थाश्रमका विधान करते हुए आचार्य कहते हैं कि उसके विषय में यह शंका

नहीं की जा सकती कि उसे ऋणत्रय की निवृत्ति किये बिना संन्यास का अधिकार नहीं हैं; क्योंकि गृहस्थाश्रमको स्वीकार करने से पूर्व तो उसका ऋणी होना ही सम्भव नहीं है। अतः आचार्य का सिद्धान्त है कि जिसे आत्मतत्वकी जिज्ञासा है और जो साध्य-साधनारूप अनित्य संसार से मुक्ति होना चाहता है, वह किसी भी आश्रम में हो, उसे संसार ग्रहण करना ही चाहिये।

इस सिद्धान्त के मुख्य आधार दो ही हैं-

(1) जिज्ञासु को तो इसलिये गृहत्याग करना चाहिये कि उसके लिये गृहस्थाश्रम में रहते हुए ज्ञानोपयोगीनी साधनसम्पत्तिको, उपार्जन करना कठिन है और

(2) बोधवान में कामनाओं का सर्वथा अभाव हो जाता है, इसलिये उसका गृहस्थाश्रम में रहना सम्भव नहीं है।

अतः ज्ञानोपयोगिनी साधन-सम्पत्ति को उपार्जन करना तथा कामनाओं का आभाव-ये ही गृहत्याग के मुख्य हेतु हैं। जो लोग घर में रहते हुए ही शमदमादि साधनसम्पन्न हो सकते हैं और जिन बोधवानों की निष्कामतामें अपने गृहविशेष में रहना बाधक नहीं होता वे घर में रहते हुए भी ज्ञानोपार्जन और ज्ञानरक्षा कर ही सकते हैं। वे स्वरूप से संन्यासी न होनेपर भी वम्तुतः संन्यासधर्मसम्पन्न होने के कारण आचार्य के मत का ही अनुसरण करने वाले हैं।

इस उपनिषद् में तीन अध्याय हैं। उनमें से पहले अध्याय में तीन खण्ड हैं तथा दूसरे और तीसरे अध्यायोंमें केवल एक-एक खण्ड हैं। प्रथम अध्याय में यह बतालाया गया है कि सृष्टि के आरम्भ में केवल एक आत्मा ही था, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था उसने लोक-रचना के लिये ईक्षण (विचार) किया और केवल सकल्प से अम्भ, मरीचि और मर तीन लोकोंकी रचना की। इन्हें रचकर उस परमात्माने उनके लिये लोकपालोकी रचना करनेका विचार किया और जलसे ही एक पुरुष की रचनाकर उसे अवयवयुक्त किया।

परमात्मा के संकल्प से ही उस विराट् पुरुष इन्द्रिय गोलक और इन्द्रियाधिष्ठाता देव उत्पन्न हो गये। जब वे इन्द्रियाधिष्ठाता देवता इस महासमुद्रमें आये तो परमात्माने उन्हें भूख-प्यास से युक्त कर दिया। तब उन्होंने प्रार्थना की कि हमें कोई भी ऐसा आयतन प्रदान किया जाय जिसमें स्थित होकर हम अन्न-भक्षण कर सकें। परमात्मा ने उनके लियें गौका शरीर प्रस्तुत किया, किन्तु उन्होंने 'यह हमारे लिये पर्याप्त नहीं हैं 'ऐसा कहकर उसे अस्वीकार कर दिया। तत्पश्चात् घोड़े का शरीर लाया गया किन्तु वह भी अस्वीकृत हुआ। अन्त में परमात्मा ने उनके लिए मनुष्य का शरीर लाया।

उसे देखकर सभी देवताओं ने एक स्वर में उनका अनुमोदन किया और वे सब परमात्मा की आज्ञा से उसके भिन्न-भिन्न अवयवों में वाक्, प्राण, चक्षु आदि रूपसे स्थति हो गये। फिर उनके लिये अन्नकी रचना की गयी। अन्न देखकर भागने लगा। देवताओं ने उसे वाणी प्राण चक्षु एवं श्रोत्रादि भिन्न-भिन्न कारणों से ग्रहण करना चाहा; परन्तु वे इसमें सफल न हुए। अन्त में उन्होंने उसे अपानद्वार ग्रहण कर लिया। इस प्रकार यह सारी सृष्टि हो जानेपर परमात्मा ने विचार किया कि अब मुझे भी इसमें प्रवेश करना चाहिये; क्योंकि मेरे बिना यह सारा प्रपंच अकिंचित्कर ही है। अतः वह उस पुरुष की मूर्द्धसीमाको विदीर्णकर उसके द्वारा उसमें प्रवेश किया कर गया। इस प्रकार जीवभावको प्राप्त होनेपर उसका भूतोंके साथ तादात्म्य हो जाता हैं। पीछे जब गुरुकृपासे बोध होनेपर उसे अपने सर्वव्यापक शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार होता है तो उसे 'इदम'- इस तरह अपरोक्षरूप से देखने के कारण उसकी 'इन्द्र' संज्ञा हो जाती है।

इस प्रकार ईक्षण से लेकर परमात्मा के प्रवेशपर्यन्त जो सृष्टिक्रम बतलाया गया है, इसे ही विद्यारण्यस्वामी ने ईश्वर सृष्टि कहा है। ईक्षणादिप्रवेशान्तः संसार ईशकल्पितः। इस आख्यायिका में बहुत-सी विचित्र बातें देखी जाती हैं। यों तो माया में कोई भी बात कुतूहलजनक नहीं हुआ करती; तथापि आचार्य का तो कथन है कि यह केवल अर्थवाद है।

इसका अभिप्राय आत्मबोध कराने में है। यह केवल आत्मा के अद्वितीयत्व का बोध कराने के लिये ही कही गयी है; क्योंकि समस्त संसार आत्माका ही संकल्प होनेके कारण आत्मस्वरूप ही है। द्वितीय अध्यात्म के आरम्भ में इसी प्रकार उपक्रम कर भगवान भाष्याकारने आत्मतत्वका बड़ा सुन्दर और युक्तियुक्त विवेचन किया है।

इस अध्याय में आत्मज्ञान के हेतुभूत वैराग्य की सिद्धिके लिये जीव की तीन अवस्थाओं का, जिन्हें प्रथम अध्यायमें 'आवसथ" नामसे कहा है, वर्णन किया गया है। जीवके तीन जन्म माने गये हैं-

(1) वीर्यरूपसे माताकी कुक्षिमें प्रवेश करना,
(2) बालकरूप से उत्पन्न होना और
(3) पिताका मृत्युको प्राप्त होकर पुनः जन्म ग्रहण करना।

'आत्मा वै पुत्रनामासि' (कौषी) (2। 11) इस श्रुति के अनुसार पिता और पुत्र का अभेद है; इसीलिये पिता के पुनर्जन्म को भी पुत्रका तृतीय जन्म बतलाया गया है। वामदेव ऋषि ने गर्भ में रहते हुए ही अपने बहुत-से जन्मों का अनुभव बतलाया था और यह कहा जाता था कि मैं लोहमय दुर्गों के समान सैकड़ों शरीर में बंदी रह चुका हूँ; किन्तु अब आत्माज्ञान हो जाने से मैं श्येन पक्षी के समान उनका भेदन कर बाहर निकल आया हूँ। ऐसा ज्ञान होने के कारण ही वामदेव ऋषि देहपात के अनन्तर अमर पद को प्राप्त हो गये थे। अतः आत्मा को भूत एवं इन्द्रिय आदि अनात्मप्रपंचसे सर्वथा असंग अनुभव करना ही अमरत्व-प्राप्तिका एकमात्र साधन है।

इस प्रकार द्वितीय अध्यायमें आत्माज्ञान को परमपद-प्राप्तिका एकमात्र साधन बतलाकर तीसरे अध्यायमें उसी का प्रतिपादन किया गया है। वहाँ बतलाया है कि हृदय

मन, संज्ञान, आज्ञान, विज्ञान, मेधा, दृष्टि, धृत, मति, मनीषा, जूति, स्मृति, संकल्प, क्रतु, असु काम एवं वश-ये सब प्रज्ञान के ही नाम हैं। यह प्रज्ञान ही ब्रह्मा, इन्द्र, प्रजापति, समस्त देवगण, पश्चमहाभूत तथा उद्विज्ज, स्वेदज अण्डज और जरायुज आदि सब प्रकार जीव-जन्तु हैं। यही हाथी, घोड़े, मनुष्य तथा सम्पूर्ण स्थावर जंगम जगत् है। इस प्रकार यह सारा संसार प्रज्ञानमें स्थिति है, प्रज्ञानसे ही प्रेरित होनेवाला है और स्वयं भी प्रज्ञानस्वरूप ही है, तथा प्रज्ञान ही ब्रह्म है। जो इस प्रकार जानता है वह इस लोक से उत्क्रमण कर उस परमाधाम में पहुँच समस्त कामनाओं को प्राप्त कर अमर हो जाता है।

8. छान्दोग्य उपनिषद

सामवेद की तलवकार शाखा में इस उपनिषद को मान्यता प्राप्त है। इसमें दस अध्याय हैं। इसके अन्तिम आठ अध्याय ही इस उपनिषद में लिये गये हैं। यह उपनिषद पर्याप्त बड़ा है।

नाम के अनुसार इस उपनिषद का आधार 'छन्द' है, इसका यहाँ व्यापक अर्थ के रूप में प्रयोग किया गया है। इसे यहाँ 'आच्छादित करने वाला' माना गया है। साहित्यिक कवि की भांति ऋषि भी मूल सत्य को विविध माध्यमों से अभिव्यक्त करता है। वह प्रकृति के मध्य उस परमसत्ता के दर्शन करता है। इसमें ॐकार ('ॐ') को सर्वोत्तम रस माना गया है।

9. बृहदारण्य उपनिषद

इसके नाम का अर्थ 'बृहद ज्ञान वाला' या 'घने जंगलों में लिखा गया' उपनिषद है। इसमें तत्त्वज्ञान और तदुपयोगी कर्म तथा उपासनाओं का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। बृहदारण्यक उपनिषद् अद्वैत वेदांत और संन्यासनिष्ठा का प्रतिपादक है। उपनिषदों में सर्वाधिक बृहदाकार इसके ३ काण्ड (मधुकाण्ड, मुनिकाण्ड, खिलकाण्ड), ६ अध्याय, ४७

ब्राह्मण और प्रलंबित ४३५ पदों का शांति पाठ 'ॐ पूर्णमदः' इत्यादि है और ब्रह्मा इसकी संप्रदाय परंपरा के प्रवर्तक हैं।

इस उपनिषद् का ब्रह्मनिरूपणात्मक अधिकांश उन व्याख्याओं का समुच्चय है जिनसे अजातशत्रु ने गार्ग्य बालाकि की, जैवलि प्रवाहण ने श्वेतकेतु की, याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी और जनक की तथा जनक के यज्ञ में समवेत गार्गी और जारत्कारव आर्तभाग इत्यादि आठ मनीषियों की ब्रह्मजिज्ञासा निवृत्त की थी।

10. श्वेताकतर उपनिषद

श्वेताश्वतर संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा । २. उपनिषद् विशेष । विशेष—कृष्ण यजुर्वेद की यह उपनिषद् छह अध्यायों की है । इसमें वेदांत के प्रायः सब सिद्धांतों के मूल पाए जाते है । भगवद् गीता के बहुत से प्रसंग इससे लिए हुए जान पड़ते हैं । इसकी संस्कृत बड़ी ही सरल और स्पष्ट है । वेदांत के प्रसंगों के अतिरिक्त इसमें योग और सांख्य के सिद्धांतों के मूल भी मिलते है । वेदांत, सांख्य और योग तीनों शास्त्रों के कर्ताओं ने मानो इसी के मूल वाक्यों को लेकर ब्रह्म के स्वरूप तथा पुरुष-प्रकृति भेद आदि का विस्तार किया है ।

1.5 आदि शंकराचार्य द्वारा रचित उपनिषदों के भाष्य

शंकराचार्य ने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर- इन ग्यारह उपनिषदों का भाष्य किया है। वाचस्पति मिश्र ने वैशेषिक दर्शन को छोड़कर बाकी पाँचो दर्शनों पर भाष्य लिखा है।

1.6.2 शिक्षा दीक्षा और आध्यात्मिक प्रेरणा

आदि शंकराचार्य (780-812) आज से लगभग 12 वर्षों पूर्व मध्यप्रदेश की नर्मदा तट पर ज्ञान की तलाश में आए थे और ओमकारेश्वर के पास गोविंद पाद आचार्य के चरणों में बैठकर उन्होंने प्रस्थानत्रई पर भाष्य लिखा था। इस यथार्थ घटना से आज बहुत कम लोग परिचित हैं । आदि शंकर का 12 100 वर्षों पहले धरती पर एक चमत्कार के रूप में अविभार्व हुआ था।यह सब मध्य प्रदेश की पावन धरती पर हुआ नर्मदा तट पर। भारतीय दर्शन के बेजोड़ ग्रंथों की रचना शंकराचार्य ने गोविंदपादआचार्य के मार्गदर्शन में की थी। इस प्रकार ओमकारेश्वर स्थित गोविंद पाद आचार्य वह शिष्य कालडी में जन्मे शंकराचार्य गुरु शिष्य परंपरा के सूत्रधार रहे। शंकर ने (ओंकार नाथ मलयाली और संस्कृत ग्रंथों में ओमकारेश्वर कुंभकार नाथ कहा गया है) मैं ठहर कर श्रद्धालुओं से गोविंद पाद आचार्य के आश्रम का पता पूछा जो कुछ ही दूर पर एक गुफा में अवस्थित था। विद्यावाचस्पति वी. पेनोली(1999,पृ.143) के अनुसार 12 वर्ष की अवस्था में आदि शंकर गोविंद पाद के आश्रम पहुंचे थे जो नर्मदा के तट पर स्थित था। जब शंकर उनके आश्रम में पहुंचे तब गोविंदपाद तपस्या लीन थे। शंकर ने उस गुफा को निहारा जहां ऋषि ध्यान मग्न थे। उन्होंने भक्ति भाव से गुरु को दंडवत प्रणाम किया और उनकी स्तुति की-" मैं शंकर हूं मैं आपकी पूजा करता हूं। आप तो आदि शेष के अवतार हैं। पतंजलि के सामान आपने महान योगी गोडपाद से आत्मज्ञान के मार्ग पर महारत हासिल की है। आप तो व्यास के पुत्र शुक के शिष्य हैं। मेरी प्रार्थना है कि आप मुझ पर कृपा करें और मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार कर लें जिससे मैं ब्रह्म के स्वरूप को समझ सकूं"।

ऋषि ने आंखें खोली और शंकर से उनका परिचय पूछा और कहा बालक तू है कौन ? शंकर ने पूरी विनम्रता के साथ प्रत्युत्तर -

स्वामिन् नाहं न पृथिवी न न एवं न तेजो

न स्प स्पर्शनो न गगनंन च तद् गुणा वा।

नापीन्द्रियाण्यपि तु विद्धि ततो ततोऽवशिष्टो

यः केवलो s स्ति परमः शिवोऽहमस्ति।।

(श्रीशंकरदिग्विजयमु, सर्ग ५, श्लोक९९)

(स्वामी! मैं ना तो पृथ्वी हूं। ना जल हूं। ना अग्नि हूं।ना इसमें से कुछ भी हूं। ना ही कोई गुणधर्म हूं ।मैं इंद्रियों में से कोई इन द यह भी नहीं हूं मैं अखंड चैतन्य हूं)

बाल शंकर के मुंह से ऐसा सुनने के बाद ऋषि बेहद प्रसन्न हुए हुए हर्ष उन्माद से भर कर बोल उठे-अच्छा तुम वही (कैलाश पर्वत वासी) शंकर हो।गोविंदपाद के हर्ष का कोई पारावार नहीं था क्योंकि शंकर के प्रत्युत्तर में उन्हें शंकर के समूचे व्यक्तित्व का एहसास हो गया। शंकर तो अब तक गहन अध्ययन के कारण पूर्णवेता थे ही। शंकर ने जिस ढंग से अपने को प्रस्तुत किया उससे गोविंदपादअत्यधिक प्रभावित थे। उन्होंने शंकर के मुख्य मंडल में ज्ञान के प्रकाश को देखा था। इसके बाद समूची विनमता के साथ शंकर ने गुरु की चरण वंदना की। शंकर को गुरु ने दीक्षा दी और उन्हें अपना शिष्य बना लिया।गौड़पाद के सिद्धांत बौद्धों के निकट हैं। उनका अजातिवाद माध्यमिक पद्धति पर आधारित है। इनके द्वारा प्रतिपादित आत्मा का स्वरूप योगाचारानुमत विज्ञान (आलय)

1.6.3 आदि शंकराचार्य एक विद्रोही संन्यासी के रूप में

आज से लगभग 1500वर्ष पूर्व 8साल का नन्हा बच्चा जिसके दूध के दांत भी न टूटे होंगे अपनी मां को अकेला छोड़ केरल से पांव पांव चल यात्रा करता हुआ विदर्भ, महाकौशल प्रांत को लांघता हुआ सिर्फ अपनी ज्ञान की पिपासा शांत करने हेतु गुरु की तलाश में नर्मदा तट पर पहुंचा और अपने गुरु गोपाल से शिक्षा ग्रहण की। उस समय समाज में फैली हुई कुरीतियों और पाखंड को आदि शंकराचार्य ने समाजिक पतन का मूल जान कर इन सब कुप्रथाओं और गलत धारणाओं का खुला खंडन किया और इसके लिए एक क्रांतिकारी विद्रोही की भांति अपने विचार व्यक्त किए और जाति संप्रदाय भाषा लिंग इन सभी से परे आत्म के प्रवर्तक प्रखर प्रवक्ता के रूप में अद्वैत दर्शन की स्थापना कर मानव समाज को समता मूलक और समावेशी विकास की ओर ले गए।

1.8 नई शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा के भारतियकरण का संप्रत्यय-

न जाने कितने ही आक्रमण और संघर्षों से जूझने के बाद भी हमारी भारतीय संस्कृति और सभ्यता आज भी उतनी मजबूती से टिकी हुई है समय पर धर्म के असमाजिक तत्वों के द्वारा बंधुत्व और साम्प्रदायिक सौहार्द वह शांति भंग करने हेतु न जाने कितने आडंबर पाखंड और समाज को तोड़ने वालो ने जब जब सिर उठाया तब तब आदि शंकराचार्य जैसे महान दार्शनिक और विद्रोही संन्यासियों ने सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर

ली और समाज को बिखरने से बचाया है। हमारी स्कूली शिक्षा में वेदान्त दर्शन और उपनिषदों,भाष्यों, श्रीमद्भागवत आदि के अंशों को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाएगा तो हमारे छात्र न केवल संस्कृति को जानेगा समझेगा अपितु संरक्षण भी करने के लिए प्रेरित होगा।आज के युग की मांग है हमारे युवा पीढ़ी, हमारे बालक/बालिकाओं में देशप्रेम और राष्ट्रनिर्माण में सहयोग की भावना का विकास हमारी मूल संस्कृति और आध्यात्मिक चिंतन से अंधविश्वासों को खत्म कर वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा संभव है।

आदि शंकराचार्य के जन्मदिन को दर्शन दिवस के रूप में

हमारे तात्कालिक प्रधानमंत्री माननीय नरेंद्र दामोदर मोदी जीने तय किया-कि के **(दर्शन दिवस)** के रूप में आदि गुरु शंकराचार्य जी का जन्म दिवस मनाया जाएगा। क्योंकि वह मानते हैं कि सही दिशा में समाज को ले जाने की कोशिश संतों के मार्गदर्शन में करना चाहिए |

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल जी ने **कहा** कि आदि शंकराचार्य के जन्म को ध्यान में रखते हुए आज के दिन को फिलॉस्फर दिवस के रूप में मनाना स्वागत योग्य कदम है. पाश्चात्य जगत का शब्द फिलॉस्फर जिसको भारत के दार्शनिक से जोड़ा जाता है, यह सही नहीं है. पाश्चात्य जगत में फिलॉस्फर बड़े विद्वान लोग होते हैं, वे गहराई से भूतकाल का, भविष्य का, वर्तमान का एनालाइसिस (विश्लेषण) करके समाज के सामने चिंतन करते हैं, उनको हम लोग फिलॉस्फर कहते हैं. भारत का दार्शनिक इससे थोड़ा सा भिन्न है, भारत का दार्शनिक अपने अंदर देखता है. भारत का धीर योगी दार्शनिक आंख बंद कर, बाहर की क्रियाओं को बंद करता है और अंदर देखता है, अंदर झांकता है कि मैं कौन हूं, मेरे अंदर कौन है, जो मेरे अंदर है, वही सबके अंदर है क्या? एकात्मा बोध को जो साक्षात कर देता है, उसको भारत में 'दार्शनिक' कहते हैं. यह जरूरी नहीं कि भारत का दार्शनिक बहुत अधिक विद्वान होगा, उसने बहुत सारे ग्रंथ पढ़े होंगे. जैसे रामकृष्ण परमहंस किसी विश्वविद्यालय में नहीं पढ़े, पर बड़े दार्शनिक थे. जो दूसरों के मन में देखता है, दूसरों की अंतर्आत्मा को देखता है और देखता है कि मैं और आप एक ही हैं, दो हैं ही नहीं. यह भारत के दार्शनिकों की परंपरा है. पाश्चात्य जगत का फिलॉस्फर फिलॉस्फी देता है, साहित्य देता है, सिद्धांत देता है कि आप उस पर चलिए. भारत का दार्शनिक ऐसा नहीं करता, भारत का दार्शनिक जो देखता है, उसको अपने जीवन में जीता है. उसको अपने जीवन में उतार देता है, इसलिए भारत का दार्शनिक एक अलग स्थान रखता है. आदि शंकराचार्य उसी महान परंपरा के एक महान व्यक्तित्व हैं.| आदि शंकराचार्य के जन्म दिवस के अवसर पर नवोदय एवं फेथ फाउंडेशन

द्वारा राष्ट्रीय फिलॉस्फर दिवस के रूप में कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसमें युवा फांउडेशन तथा ग्लोबल सोसायटी ने भी सहयोग किया. फाउंडेशन के सदस्यों ने मिट्टी कलश में एकत्र करके केदारनाथ में जहां से शंकराचार्य जी शिवलोक को गए, वहां उस कलश को खाली करके उस जमीन को प्रणाम किया. इससे संबंधित एक वृत्तचित्र प्रदर्शन से आदि शंकराचार्य जी के जीवन से जुड़े विभिन्न स्थानों की जानकारी दी गयी. इस अवसर पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की पुस्तक 'मन की बात' का लोकार्पण भी किया गया. कांस्टीट्यूशन क्लब में आयोजित कार्यक्रम में मंच से केन्द्रीय संस्कृति मंत्री डॉ. महेश शर्मा, अखिल भारतीय सह प्रचार प्रमुख जे. नंदकुमार जी, साध्वी जया भारती, स्वामी संतोषानन्द, नवोदय फांउडेशन के अध्यक्ष डॉ. कैलाशंथा पिल्लई, कर्नल अशोक किनी तथा पी. रामचन्द्रन ने आदि शंकराचार्य के जीवन पर प्रकाश डाला|

डॉ. कृष्ण गोपाल जी ने आदि शंकराचार्य जी के बारे में कहा कि केरल के कालडी में पैदा हुआ यह छोटा सा बालक, बाल्यावस्था में ही जिनके पिताजी गुजर गए. यज्ञोपवीत के बाद, 8 वर्ष में सन्यास लिया, 16 वर्ष में ज्ञान प्राप्त किया, 32 वर्ष में चले गए. 8 वर्ष की आयु में सन्यास लेकर आगे बढ़ना यह उस युग की मांग थी, आवश्यकता थी. उस समय देश की महान वैदिक परंपरा पर संकट आ गया था. उस काल में भगवान बुद्ध ने राजगृह त्याग कर करुणा, ममता, प्रेम, अहिंसा का संदेश दिया था. उनके विलक्षण व्यक्तित्व से प्रभावित होकर राजा-महाराजा सहित हजारों लोग उनके पीछे चल पड़े. देखते ही देखते बौद्ध मत सारे देश में छा गया. भगवान बुद्ध जब चले गए, लेकिन उन्होंने कुछ बातों का उत्तर नहीं दिया. उन्होंने सोचा कि इस पर विवाद होगा कि ईश्वर होता है कि नहीं होता, पुनर्जन्म, कर्मफल होता है कि नहीं होता? ऐसे अनेक प्रश्न थे. इसका उत्तर देना ठीक नहीं है, इनके उत्तर की आवश्यकता नहीं है. लेकिन भारत की परंपरा में यह बड़े महत्वपूर्ण प्रश्न हैं. भारत का अध्यात्म इस पर टिका है. सारी सृष्टि को संचालित करता कौन है. भगवान बुद्ध का व्यक्तित्व ऐसा था कि तब लोग शांत हो गए. लेकिन उनके जाने के बाद लोग शांत नहीं रहे. प्रश्न पर प्रश्न आए,

बंटवारा हुआ. हेनयान, महायान हो गया, बहुत प्रकार की परंपराएं चलने लगीं और धीरे-धीरे लोगों को लगा कि यह क्या हो गया है. समस्या आ गई, लोगों को लगा कि इससे तो हमारा पुराना वैदिक धर्म ही अच्छा था. ठीक है, पुराने में कुछ विकृतियां थीं, इतने बड़े-बड़े लम्बे महायज्ञ होते थे, पशुबलि भी हो जाती थी. लोग उससे उकता गए, इसलिए बुद्ध की शरण में आए. अब यहां आकर उकता गए कि अब कहां जाएं. यह बड़ा वैचारिक और दार्शनिक संकट उस समय लोगों के सामने खड़ा हो गया. इस परिस्थिति में शंकर खड़े होते हैं. कठिन काल था, वैदिकों के लिए, वैदिक परंपरा को मानने वाले लोगों के लिए भी संकट काल था |

उन्होंने बताया कि उस समय बौद्ध मत को मानने वालों में भी नागार्जुन जैसे बड़े-बड़े प्रकांड विद्वान थे, जो बौद्ध मत के विस्तार में लगे थे. लेकिन अब नया संकट खड़ा था, वैचारिकता, व्यवहारिकता, आध्यात्मिकता का. समाज कौन से मार्ग को अपनाए, यह बड़ा कठिन प्रश्न खड़ा था. ऐसे में शंकर खड़ा होता है, यज्ञोपवीत में भिक्षा मांगने अपने गांव के दूर कोने में सफाई करने वाली महिला के घर में जाकर कहता है, 'माँ भिक्षाम देहि'. लोगों को समझ में आ गया कि यह कोई सामान्य बालक नहीं है. नहीं तो यज्ञोपवीत में बच्चे अपने कुल-खानदान में भिक्षा मांगने जाते हैं. सन्यास लेकर शंकर काशी आ गए, काशी में अध्ययन के साथ बहुत छोटी 12-13 वर्ष की अवस्था में अध्यापन भी किया. वहां चांडाल मिल गया, शंकराचार्य के शिष्यों ने उसे दूर हटो कहा. चांडाल इस पर हंसने लगता है, चांडाल समझ गया कि उनमें शंकर ही सबसे विद्वान है तो उनसे कहता है, महाराज दूर हटो किसको कहते हैं आप. वह कहता है कि आपका शरीर और मेरा शरीर दोनों अन्न से बने हैं, वही अन्न आपने खाया है और वही अन्न मैंने खाया है, और ऐसा नहीं है तो जो चैतन्य आपके अंदर है, वही चैतन्य मेरे अंदर है तो किसको दूर हटने को कहते हैं आप. शंकर कहते हैं यदि कोई भी व्यक्ति है जो यह जानता है, अनुभव करता है कि चींटी के अंदर हो या हाथी के अंदर, किसी भी मनुष्य के अंदर हो, जीव के अंदर हो, ब्रह्म एक ही है, वो चांडाल हो या ब्राह्मण वो मेरे लिए गुरु

के समान है. शंकराचार्य केवल एक दर्शन देने वाले व्यक्ति नहीं थे. उसको जीने वाले व्यक्ति थे, अनुभव करने वाले व्यक्ति थे. आत्मा एक है, वो दो नहीं है, वो चाहे राजा की आत्मा हो या रंक की, विद्वान की आत्मा हो या निरक्षर की इन दोनों की आत्मा में अंतर नहीं होता. इसी सिद्धान्त को लेकर शंकराचार्य जी आगे बढ़ते हैं और स्थापित करते जाते हैं कि जो आत्मा है, वो परमात्मा का ही अंश है. उसका वर्णन करते करते भिन्न-भिन्न प्रकार के शास्त्रों का, ग्रंथों का, श्लोकों की रचना का, उन्होंने बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया. बहुत छोटी सी आयु में सबसे पहला काम उन्होंने गीता और बारह उपनिषद पर भाष्य लिख कर किया |

उन्होंने कहा कि बहुत कम लोगों को ध्यान होगा कि गीता उस काल में लुप्तप्राय थी, ध्यान में नहीं थी. शंकराचार्य पिछले 2000 साल में पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने गीता को वहां से निकालकर सबके सामने रखा. शंकराचार्य ने कहा कि जो शाश्वत सत्य है, वह शिव है. यहां शिव का अर्थ मूर्ति का शिव नहीं, शिव का अर्थ परब्रह्म, ईश्वर वह निराकार है, वही सत्य है. यह दिखने वाला जगत जो है, वह सिनेमा की तरह है, रील की तरह चलता है, स्लाइड की तरह बदलता है. कुछ भी स्थिर नहीं है, जैसे माता-पिता, भाई-दोस्त, भवन-भोजन, कपड़ा सब दिखने वाले तत्व अशाश्वत है. उस समय की परिस्थिति में जब हजारों तरह की पूजा पद्धति शुरु हो गई थी, तब पांच तरह की सरल पूजा को उन्होंने स्थापित किया. उन्होंने शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश और शक्ति इन पांच पूजा पद्धति में सबको आने को कहा. लेकिन यह भी बताया कि यह पूजा एक साधन है साध्य को प्राप्त करने का, सगुण से निर्गुण की ओर बढ़ने का. धान के बीज के अंदर निकलने वाले चावल के ऊपर की जो भूसी होती है, वह किसी काम की नहीं होती, उपयोगी चावल है, निरुपयोगी धान का छिलका है, लेकिन जब हम धान का पौधा बोते हैं तो धान को उस छिलके के साथ बोना होता है. आदि शंकराचार्य भी भिन्न-भिन्न प्रकार की पूजा-पद्धति को साधना बता रहे हैं कि यह चावल के छिलके की तरह हैं. जो शाश्वत है तो तत्व रूप शिव अलग है. उसको प्राप्त करने के लिए सारी साधना है.

सह सरकार्यवाह जी ने कहा कि उस समय में कैसी दूरदृष्टि रही होगी उनकी कि वेद का जो वैचारिक दर्शन था, उससे भौगोलिक रूप से देश को कैसे एक करें. आदि शंकराचार्य ने इसके लिए बौद्ध के अनुयाइयों को भी साथ ले लिया. वो सबको लेकर चलते हैं, भगवान बुद्ध को कहा अरे आप तो हमारे विष्णु के अवतारों में से एक हैं, उन्हें विष्णु का अवतार मान लिया. समग्र भारत की राष्ट्रीय भौगोलिक एकता के लिए उन्होंने केरल से उत्तर में केदारनाथ, बद्रीनाथ, पूर्व में आसाम के घने जंगलों से होते हुए पश्चिम में द्वारका वहां से जगन्नाथ पुरी, अनेक क्षेत्रों में पद यात्राएं की. अयोध्या गए, कुरुक्षेत्र गए, काशी गए, प्रयाग गए, हरिद्वार गए, कोई भी ऐसा तीर्थ नहीं है जहां वे नहीं गए हों. उन्होंने सारे देश का लगभग दो बार पैदल भ्रमण किया. कोई किनारा नहीं छोड़ा रामेश्वरम से लेकर केदार बद्री तक, उधर द्वारका से लेकर जगन्नाथ कामाख्या तक. उनमें प्रचंड तेजस्विता थी, बौद्धिक क्षमता थी, विनम्रता थी, संगठन को कुशल शक्ति थी. सारे देश के वैचारिक अधिष्ठान को एक भौगोलिक एकत्व में बांधने का संकल्प था आदि शंकराचार्य का. इसके लिए देश के चार अलग-अलग छोरों पर चार अलग-अलग मठ स्थापित किए. चारों वेदों के लिए साधना के केन्द्र बना दिए. दसनामी अखाड़े खड़े कर दिए. त्याग-वैराग्य का जीवन खड़ा कर दिया. इन मठों के अधिपतियों के लिए अनुशासन बना दिया. आपको यह करना है, यह नहीं करना. बहुत कठोर अनुशासन बनाया है. इस देश के शाश्वत दर्शन को फिर से पुण्य प्रवाह में लाने का काम आदि शंकराचार्य ने किया. इसलिए वे केवल फिलॉस्फर नहीं थे, वे दार्शनिक थे. जो देखा उसको जिया, अपने कृतत्व से साबित करके वो गए. यह भारत की परंपरा और विशेषता है, जब अनेक बार ऐसे संकट भारत में आते हैं कि क्या करें, क्या न करें, ऊहापोह रहता है, तब कोई न कोई ऐसा व्यक्ति खड़ा होता है जो फिर से हमारे इस दर्शन पर जमी हुई राख को हटा देता है. फिर से अपने इस दर्शन को, मौलिक शाश्वत मूल्यों के और भी निकट ले आता है. इसलिए वे केवल दार्शनिक ही नहीं समाज सुधारक भी थे, वे कवि थे, विद्वान थे, वे सारे देश की एकता के वाहक थे. शंकर निराशा के क्षणों से आशा का, विश्वास का, एक

नई सृष्टि का संदेश देता है. ईश्वर से मिले कुल 32 वर्ष के सीमित जीवन काल में ही आदि शंकराचार्य जी ने 300 वर्ष के बराबर कार्य कर के दिखाया. इसलिए आज इस दार्शनिक के जन्मदिन पर हम लोग अपने शाश्वत दर्शन को स्मरण करें. कुरीति, ढोंग-पाखंड इसको हटाने का हमको संकल्प लेना है, तभी शंकर की शाश्वतता हमारी आंखों के सामने, हमारे हृदय में जीवित रहेगी.

केन्द्रीय संस्कृति मंत्री डॉ. महेश शर्मा ने कहा कि आदि शंकराचार्य जी के जन्मदिवस पर फिलॉस्फर दिवस मनाने का फैसला मील का पत्थर साबित होगा. यह आने वाली पीढ़ियों के लिए शुभ संकेत है. जब जब हम कभी विश्व पटल पर बात करते हैं, कभी हम बिलियन और ट्रिलियन फोरेन रिजर्व की बात नहीं करते. हम बात करते हैं, भारत की धनी संस्कृति की, रिच हैरिटेज की, कल्चर की, वही हमारी पहचान है. एक फिल्मी डायलॉग है जिसमें कहते हैं कि 'मेरे पास मां है', हम कहते हैं हमारे पास भारत की धनी संस्कृति है, हमारे पास आदि शंकराचार्य हैं और यह हमारी मूल भावना का केंद्र बिंदू हैं. किसी भी व्यवस्था की जब हम शुरूआत करते हैं तो उस पर प्रश्न चिन्ह उठते हैं. हमारी प्राचीन संस्कृति, ज्ञान को विश्व के कोने-कोने में पहुंचाने का काम संस्कृति मंत्रालय के माध्यम से कर रहा हूं. देश का युवा जब बाहर विश्व में घूमने जाए उससे पहले वो भारत की धनी संस्कृति का अध्ययन करे. भारत का युवा अपने देश के प्राचीन ज्ञान और संस्कृति का अध्ययन करे, उसके बाद ही वो दुनिया के बाकी देशों में जाए.

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह प्रचार प्रमुख जे. नंदकुमार जी ने कहा कि आदि शंकराचार्य ने पूरे विश्व के लिए आत्मदर्शन का अमृत दिया. उनके जन्मदिवस पर यह आयोजन नवोदय, फेथ फांउडेशन, यूथ फांउडेशन तथा ग्लोबल सोसाइटी द्वारा किया जा रहा एक पवित्र प्रयास है. नवोदय से आह्वान किया कि बच्चों के लिए भी सनातन धर्म का जो दर्शन, वेद, पुराण, उपनिषद, सनातन धर्म की अपनी जो विरासतें हैं, इसको सिखाने के लिए कम से कम एक साप्ताहिक व्यवस्था करनी चाहिए. हम सबको मालूम हैं कि आज इस दर्शनशास्त्र के अभाव से धर्म की जानकारी न होने के कारण जिस तरह

का परिप्रेक्ष्य उभर कर आ रहा कि भारत की बर्बादी तक लोग जंग करने के लिए आ रहे हैं. इसलिए अपने बच्चों को, विद्यार्थियों को, इस तरह की शिक्षा देने के लिए कुछ इन्फार्मल सिस्टम खड़ा करने के लिए भी हम सब को मिलकर सोचने की आवश्यकता है।

दिव्य ज्योति जाग्रति फाउंडेशन की साध्वी जया भारती ने कहा कि सत्य जैसा है जब वैसा दिखे, जब आपकी अपनी सोच उसको प्रभावित न करे, जब आपकी परिस्थिति से प्रभावित आपकी सोच उसका आकलन न करे, यह सत्य जेसा है वैसा दिखे, उसे दर्शन कहते हैं. तीन चार शब्दों में आदि गुरु शंकराचार्य ने बता दिया कि सत्य है. ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है. संसार में सब कुछ बदलता रहता है, जो नहीं बदलता वह है आत्मा, ईश्वर, ब्रह्म. यही शाश्वत सत्य है. आदि गुरु शंकराचार्य ने देश के युवा को उसकी जड़ से जोड़ दिया और जिस देश के युवा को उस देश की जड़ से जोड़ दिया जाए तो वो देश हरा भरा हो जाता है, लहलहाने लगता है. हम उस देश से हैं, जहां ईश्वर सिर्फ सिद्धान्त नहीं है, ईश्वर देखा गया और इस ईश्वर के दर्शन से ही दर्शन शास्त्र बना. जो ईश्वर के दर्शन से निकली व्यवस्था होती है, उसे सनातन धर्म कहते हैं, इसी से देश चलता है, देश की राजनीति चलती है, क्योंकि धर्म के बिना राजनीति ऐसी ही है जैसे प्राणों के बिना शरीर सड़ जाता है. हम आदि शंकराचार्य जी की संस्कृति के अनुयायी है, यदि हम उनका आभार प्रकट करना चाहते हैं तो हमें अपने आचरण में उनके सिद्धांतों को लाना पड़ेगा जैसे स्वामी विवेकानन्द जी लाए |

3.1.1 उपनिषदों की जानकारी

उपनिषद क्या हैं?

उपनिषद् शब्द का साधारण अर्थ है - 'समीप उपवेशन' या 'समीप बैठना (ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिए शिष्य का गुरु के पास बैठना)। यह शब्द 'उप', 'नि' उपसर्ग तथा, 'सद्' धातु से निष्पन्न हुआ है। सद् धातु के तीन अर्थ हैं : विवरण-नाश होना; गति-पाना या जानना तथा अवसादन-शिथिल होना। उपनिषद् में ऋषि और शिष्य के बीच बहुत सुन्दर और गूढ संवाद है जो पाठक को वेद के मर्म तक पहुंचाता है।उपनिषद् हिन्दू पन्थ के महत्त्वपूर्ण श्रुति धर्मग्रन्थ हैं। ये वैदिक वाङ्मय के अभिन्न भाग हैं। ये संस्कृत में लिखे गये हैं। इनकी संख्या लगभग 200 है, किन्तु मुख्य उपनिषद 13 हैं। हर एक उपनिषद किसी न किसी वेद से जुड़ा हुआ है। इनमें परमेश्वर, परमात्मा-ब्रह्म और आत्मा के स्वभाव और सम्बन्ध का बहुत ही दार्शनिक और ज्ञानपूर्वक वर्णन दिया गया है।उपनिषदों में मुख्य रूप से 'आत्मविद्या' का प्रतिपादन है, जिसके अन्तर्गत ब्रह्म और आत्मा के स्वरूप, उसकी प्राप्ति के साधन और आवश्यकता की समीक्षा की गयी है। आत्मज्ञानी के स्वरूप, मोक्ष के स्वरूप आदि अवान्तर विषयों के साथ ही विद्या, अविद्या, श्रेयस, प्रेयस, आचार्य आदि तत्सम्बद्ध विषयों पर भी भरपूर चिन्तन उपनिषदों में उपलब्ध होता है। वैदिक ग्रन्थों में जो दार्शनिक और आध्यात्मिक चिन्तन यत्र-तत्र दिखाई देता है, वही परिपक्व रूप में उपनिषदों में निबद्ध हुआ है।

ब्रह्म, जीव और जगत की ज्ञान प्राप्ति ही वास्तव में उपनिषदों की मूल शिक्षा है। यदि पुराणों के माध्यम से वेद की व्याख्या मनोरम देव कथाओं के माध्यम से विस्तार की गई है तो उपनिषदों में वेद तत्व को सारांश में समझाने का प्रयास किया गया है, वह भी बहुत सहज भाव के साथ, ताकि वेदों के निचोड़ को बेहतर तरह से समझा जा सके। हमारे ऋषियों ने उपनिषदों में ज्ञान को विशेष महत्व दिया है, यह भी समझाने का

प्रयास किया गया है कि ज्ञान स्थूल से सूक्ष्म की तरफ ले जाता है। यही सूक्ष्म की ओर गमन की यात्रा को सहज उपनिषदों का ज्ञान बनाता है।

वेद जहां श्रुति ग्रंथ की श्रेणी में आते हैं, वहीं उपनिषद व पुराण स्मृति पर आधारित हैं, लेकिन मूल में ब्रह्म, जीव और जगत का ज्ञान की समाहित है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि ऋषियों की वाणी द्बारा वेद तत्व को सहज भाव में समझा जा सकता है, इसकी वजह यह भी है कि वेद को सही अर्थो में समझना आसान नहीं है, क्योंकि वेद को सही अर्थो में तभी समझा जा सकता है, जब कि वेदांगों की सम्पूर्ण जानकारी हो, आज के दौर में इतने ज्ञानी-ध्यानी विरले ही हैं ।

छह वेदांग हैं, ये इस प्रकार हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द और निरूक्

वर्तमान में उपनिषदों की संख्या तो 1०8 मानी जाती है, लेकिन इनमें मुख्य 12 ही माने गए हैं। 1- ईश, 2- केन, 3- कठ, 4- प्रश्न, 5- मुंडक, 6-मांडूक्य,7- तैत्तिरीय, 8- ऐतरेय, 9- छांदोग्य, 1०- बृहदारण्यक, 11- कौषीतकि तथा 12- श्वेताश्वतर । वैसे इन 1०8 उपनिषदों के अतिरिक्त नारायण, नृसिंह, रामतापनी तथा गोपाल चार उपनिषद भी हैं। जगतगुरु आदि शंकराचार्य के अनुसार इनके दस भाष्य ही दिए हैं, जो इस प्रकार है-

(1) ईश,

(2) ऐतरेय

(3) कठ

(4) केन

(5) छांदोग्य

(6) प्रश्न

(7) तैत्तिरीय

(8) बृहदारण्यक

(9) मांडूक्य और

(1०) मुंडक।

इसके अलावा (1) श्वेताश्वतर (2) कौषीतकि व (3) मैत्रायणी को उन्होंने प्रमाण कोटि में माना है।

इनके अलावा सभी अन्य उपनिषद तत्तद् देवता विषयक होने कþ कारण तांत्रिक माने गए हैं। ऐसे उपनिषदों में शैव, शाक्त, वैष्णव तथा योग विषयक उपनिषदों की प्रधान गणना है।

इस विभाग के ग्रन्थों की संख्या 123 से लेकर 1194 तक मानी गई है, लेकिन इनमें 1० ही मुख्य माने गये हैं। ईष, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक के अतिरिक्त श्वेताश्वतर और कौशीतकि को भी महत्त्व दिया गया हैं। वैसे वर्तमान में सवा दो सौ के आसपास उपनिषद मौजूद बताए जाते हैं।

यजुर्वेद से 51 उपनिषद है- 1-ईश, 2-कठ उपनिषद् , 3-तैतरीय ,4- बृहदारण्यक उपनिषद, 5-ब्रह्म , 6-कैवल्य ,7- जाबाल (यजुर्वेद), 8-श्वेताश्वतर , 9- हंस, 1०-गर्भ , 11- नारायण, 12-परमहंस , 13-अमृत-बिन्दु , 14-अमृत-नाद, 15-कालाग्निरुद्र , 16-सुबाल , 17-क्षुरिक ,18-मांत्रिक , è19-सर्व-सार, 2०-निरालम्ब , 21-शुक-रहस्य, 22-तेजो-बिन्दु , 23-ध्यानिबन्दु, 24-ब्रह्मविद्या, 25-योगतत्त्व, 26-त्रिषिख, 27-मण्डलब्राह्मण , 28- दक्षिणामूर्ति, 29-स्कन्द (त्रिपाड्विभूिट), 3०-अद्बयतारक , 31-पैंगल , 32-भिक्षुक, 33-शारीरक , 34-योगिशखा, 35-तुरीयातीत, 36-एकाक्षर, 37-अक्षि,38-अध्यात्मा, 39- अवधूत, 4०- कठरुद्र, 41- रुद्र-हृदय, 42- योग-कुण्डिलिन, 43-तारसार, 44- पंच-ब्रह्म , 45-प्राणाग्नि-होत्र, 46- याज्ञवल्क्य , 47-वराह , 48-शात्यायिन, 49-किल-सण्टारण , 5०- सरस्वती-रहस्य, 51-मुक्तिक

सामवेद से 16 उपनिषद हैं- 1- केन, 2-छान्दोग्य , 3-आरुणेय ,4-मैत्रायिण, 5-मैत्रेय, 6-वज्र-सूच , 7-योगचूडामिण 8-वासुदेव , 9-महत, 1०- संन्यास, 11-अव्यक्त, 12-कुण्डिक, 13-सावित्री, 14-रुद्राक्ष, 15- दर्शन, 16- जाबाल (सामवेद)

अथर्ववेद से 31 उपनिषद हैं- 1-प्रश्न , 2-मुण्डक , 3-माण्डुक्य,4-अथर्व-शिर, 5-अथर्व-शिख, 6-बृहज्जाबाल, 7- नृसिहतापनी, 8-परिव्रात (नारदपरिव्राजक) , 9-सीता, 1०-शरभ,

11-महानारायण, 12- रामरहस्य, 13-रामतापिण, 14-शाण्डिल्य, 15-परमहंस-परिव्राजक, 16-अन्नपूर्ण, 17-सूर्य,18-आत्मा , è19-पाशुपत, 2०- परब्रह्म, 21-त्रिपुरातपिन, 22-देवि, 23-भावन, 24- भस्म, 25-गणपित, 26-महावाक्य, 27- गोपाल-तपिण, 28- कृष्ण, 29- हयग्रीव, 3०- दत्तात्रेय, 31- गारुड

ऋग्वेद से 1० उपनिषद हैं- 1-ऐतरेय , 2-कौषीताक, 3-नाद-बिन्दु,4-आत्मबोध, 5-निर्वाण , 6-मुद्गल, 7-अक्षमालिक , 8- त्रिपुर, 9- सौभाग्य, 1०- बह्वृच

उपनिषदों में सर्वत्र समन्वय की भावना है। दोनों पक्षों में जो ग्राह्य है, उसे ले लेना चाहिए। इसी दृष्टि से ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग, विद्या और अविद्या, संभूति और असंभूति के समन्वय का उपदेश है। उपनिषदों में कभी-कभी ब्रह्मविद्या की तुलना में कर्मकाण्ड को बहुत हीन बताया गया है। ईश आदि कई उपनिषदें एकात्मवाद का प्रबल समर्थन करती हैं।

उपनिषद् ब्रह्मविद्या का द्योतक है। कहते हैं इस विद्या के अभ्यास से मुमुक्षुजन की अविद्या नष्ट हो जाती है (विवरण); वह ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है (गति); जिससे मनुष्यों के गर्भवास आदि सांसारिक दुःख सर्वथा शिथिल हो जाते हैं (अवसादन)। फलतः उपनिषद् वे 'तत्त्व' प्रतिपादक ग्रन्थ माने जाते हैं जिनके अभ्यास से मनुष्य को ब्रह्म अथवा परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

3.1.2 उपनिषदों के भाष्य

संस्कृत साहित्य की परम्परा में उन ग्रन्थों को भाष्य (शाब्दिक अर्थ - व्याख्या के योग्य), कहते हैं जो दूसरे ग्रन्थों के अर्थ की वृहद व्याख्या या टीका प्रस्तुत करते हैं।[1] मुख्य रूप से सूत्र ग्रन्थों पर भाष्य लिखे गये हैं।

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र, पदैः सुत्रानुसारिभिः।

स्वपदानि च वर्ण्यन्ते, भाष्यं भाष्यविदो विदुः ॥

(अनुवाद : जिस ग्रन्थ में सूत्र में आये हुए पदों से सूत्रार्थ का वर्णन किया जाता है, तथा ग्रन्थकार अपने द्वारा पद प्रस्तुत कर उनका वर्णन करता है, उस ग्रन्थ को भाष्य के जानकार लोग "भाष्य" कहते हैं।)

भाष्य के प्रकार

भाष्य कई प्रकार के होते हैं - प्राथमिक, द्वितीयक या तृतीयक। जो भाष्य मूल ग्रन्थों की टीका करते हैं उन्हें प्राथमिक भाष्य कहते हैं। किसी ग्रन्थ का भाष्य लिखना एक अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण कार्य माना जाता है।

अपेक्षाकृत छोटी टीकाओं को वाक्य या वृत्ति कहते हैं। जो रचनायें भाष्यों का अर्थ स्पष्ट करने के लिये रची गयी हैं उन्हें वार्तिक कहते उपनिषदकाल के पहले : वैदिक युग वैदिक युग सांसारिक आनंद एवं उपभोग का युग था। मानव मन की निश्चिंतता, पवित्रता, भावुकता, भोलेपन व निष्पापता का युग था। जीवन को संपूर्ण अल्हड़पन से जीना ही उस काल के लोगों का प्रेय व श्रेय था।

प्रकृति के विभिन्न मनोहारी स्वरूपों को देखकर उस समय के लोगों के भावुक मनों में जो उद्गार स्वयंस्फूर्त आलोकित तरंगों के रूप में उभरे उन मनोभावों को उन्होंने प्रशस्तियों, स्तुतियों, दिव्यगानों व काव्य रचनाओं के रूप में शब्दबद्ध किया और वे वैदिक ऋचाएँ या मंत्र बन गए। उन लोगों के मन सांसारिक आनंद से भरे थे, संपन्नता से संतुष्ट थे, प्राकृतिक दिव्यताओं से भाव-विभोर हो उठते थे। अतः उनके गीतों में यह कामना है कि यह आनंद सदा बना रहे, बढ़ता रहे और कभी समाप्त न हो।

उन्होंने कामना की कि इस आनंद को हम पूर्ण आयु सौ वर्षों तक भोगें और हमारे बाद की पीढ़ियाँ भी इसी प्रकार तृप्त रहें। यही नहीं कामना यह भी की गई कि इस जीवन के समाप्त होने पर हम स्वर्ग में जाएँ और इस सुख व आनंद की निरंतरता वहाँ भी बनी रहे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न अनुष्ठान भी किए गए और देवताओं को प्रसन्न करने के आयोजन करके उनसे ये वरदान भी माँगे गए।

जब प्रकृति करवट लेती थी तो प्राकृतिक विपदाओं का सामना होता था। तब उन विपत्तियों केकाल्पनिक नियंत्रक देवताओं यथा मरुत, अग्नि, रुद्र आदि को तुष्ट व प्रसन्न करने के अनुष्ठान किए जाते थे और उनसे प्रार्थना की जाती थी कि ऐसी विपत्तियों को आने न दें और उनके आने पर प्रजा की रक्षा करें।

कुल मिलाकर वैदिक काल के लोगों का जीवन प्रफुल्लित, आह्लादमय, सुखाकांक्षी, आशावादी और जिजीविषापूर्ण था। उनमें विषाद, पाप या कष्टमय जीवन के विचार की छाया नहीं थी। नरक व उसमें मिलने वाली यातनाओं की कल्पना तक नहीं की गई थी। कर्म को यज्ञ और यज्ञ को ही कर्म माना गया था और उसी के सभी सुखों की प्राप्ति तथा संकटों का निवारण हो जाने की अवधारणा थी।

यह जीवनशैली दीर्घकाल तक चली। पर ऐसा कब तक चलता। एक न एक दिन तो मनुष्य के अनंत जिज्ञासु मस्तिष्क में और वर्तमान से कभी संतुष्ट न होने वाले मन में यह जिज्ञासा, यह प्रश्न उठना ही था कि प्रकृति की इस विशाल रंगभूमि के पीछे सूत्रधार कौन है, इसका सृष्टा/निर्माता कौन है, इसका उद्गम कहाँ है, हम कौन हैं, कहाँ से आए हैं, यह सृष्टि अंततः कहाँ जाएगी। हमारा क्या होगा? शनैः-शनैः ये प्रश्न अंकुरित हुए। और फिर शुरू हुई इन सबके उत्तर खोजने की ललक तथा जिज्ञासु मन-मस्तिष्क की अनंत खोज यात्रा।

उपनिषदकालीन विचारों का उदय :

ऐसा नहीं है कि आत्मा, पुनर्जन्म और कर्मफलवाद के विषय में वैदिक ऋषियों ने कभी सोचा ही नहीं था। ऐसा भी नहीं था कि इस जीवन के बारे में उनका कोई ध्यान न था। ऋषियों ने यदा-कदा इस विषय पर विचार किया भी था। इसके बीज वेदों में यत्र-तत्र मिलते हैं, परंतु यह केवल विचार मात्र था। कोई चिंता या भय नहीं।

आत्मा शरीर से भिन्न तत्व है और इस जीवन की समाप्ति के बाद वह परलोक को जाती है इस सिद्धांत का आभास वैदिक ऋचाओं में मिलता अवश्य है परंतु संसार में आत्मा का आवागमन क्यों होता है, इसकी खोज में वैदिक ऋषि प्रवृत्त नहीं हुए। रामधारीसिंह 'दिनकर' के अनुसार 'अपनी समस्त सीमाओं के साथ सांसारिक जीवन वैदिक ऋषियों का प्रेय था।

प्रेय को छोड़कर श्रेय की ओर बढ़ने की आतुरता उपनिषदों के समय जगी, तब मोक्ष के सामने ग्रहस्थ जीवन निस्सार हो गया एवं जब लोग जीवन से आनंद लेने के बजाय उससे पीठ फेरकर संन्यास लेने लगे। हाँ, यह भी हुआ कि वैदिक ऋषि जहाँ यह पूछ कर शांत हो जाते थे कि 'यह सृष्टि किसने बनाई है?' और 'कौन देवता है जिसकी हम उपासना करें'?

वहाँ उपनिषदों के ऋषियों ने सृष्टि बनाने वाले के संबंध में कुछ सिद्धांतों का निश्चय कर दिया और उस 'सत' का भी पता पा लिया जो पूजा और उपासना का वस्तुत: अधिकार है। वैदिक धर्म का पुराना आख्यान वेद और नवीन आख्यान उपनिषद हैं।'

वेदों में यज्ञ-धर्म का प्रतिपादन किया गया और लोगों को यह सीख दी गई कि इस जीवन में सुखी, संपन्न तथा सर्वत्र सफल व विजयी रहने के लिए आवश्यक है कि देवताओं की तुष्टि व प्रसन्नता के लिए यज्ञ किए जाएँ। 'विश्व की उत्पत्ति का स्थान

यज्ञ है। सभी कर्मों में श्रेष्ठ कर्म यज्ञ है। यज्ञ के कर्मफल से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।' ये ही सूत्र चारों ओर गुँजित थे।

दूसरे, जब ब्राह्मण ग्रंथों ने यज्ञ को बहुत अधिक महत्व दे दिया और पुरोहितवाद तथा पुरोहितों की मनमानी अत्यधिक बढ़ गई तब इस व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और विरोध की भावना का सूत्रपात हुआ। लोग सोचने लगे कि 'यज्ञों का वास्तविक अर्थ क्या है?' 'उनके भीतर कौन सा रहस्य है?' 'वे धर्म के किस रूप के प्रतीक हैं?' 'क्या वे हमें जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुँचा देंगे?'

इस प्रकार, कर्मकाण्ड पर बहुत अधिक जोर तथा कर्मकाण्डों को ही जीवन की सभी समस्याओं के हल के रूप में प्रतिपादित किए जाने की प्रवृत्ति ने विचारवान लोगों को उनके बारे में पुनर्विचार करने को प्रेरित किया।

प्रकृति के प्रत्येक रूप में एक नियंत्रक देवता की कल्पना करते-करते वैदिक आर्य बहुदेववादी हो गए थे। उनके देवताओं में उल्लेखनीय हैं- इंद्र, वरुण, अग्नि, सविता, सोम, अश्विनीकुमार, मरुत, पूषन, मित्र, पितर, यम आदि। तब एक बौद्धिक व्यग्रता प्रारंभ हुई उस एक परमशक्ति के दर्शन करने या उसके वास्तविक स्वरूप को समझने की कि जो संपूर्ण सृष्टि का रचयिता और इन देवताओं के ऊपर की सत्ता है। इस व्यग्रता ने उपनिषद के चिंतनों का मार्ग प्रशस्त किया।

उपनिदों का स्वरूप :

उपनिषद चिंतनशील एवं कल्पाशील मनीषियों की दार्शनिक काव्य रचनाएँ हैं। जहाँ गद्य लिख गए हैं वे भी पद्यमय गद्य-रचनाओं में ऐसी शब्द-शक्ति, ध्वन्यात्मकता, लव एवं अर्थगर्भिता है कि वे किसी दैवी शक्ति की रचनाओं का आभास देते हैं। यह सचमुच अत्युक्ति नहीं है कि उन्हें 'मंत्र' या 'ऋचा' कहा गया। वास्तव में मंत्र या ऋचा का संबंध

वेद से है परंतु उपनिषदों की हमत्ता दर्शाने के लिए इन संज्ञाओं का उपयोग यहाँ भी कतिपय विद्वानों द्वारा किया जाता है।

उपनिषद अपने आसपास के दृश्य संसार के पीछे झाँकने के प्रयत्न हैं। इसके लिए न कोई उपकरण उपलब्ध हैं और न किसी प्रकार की प्रयोग/अनुसंधान सुविधाएँ संभव है। अपनी मनश्चेतना, मानसिक अनुभूति या अंतर्दृष्टि के आधार पर हुए आध्यात्मिक स्फुरण या दिव्य प्रकाश को ही वर्णन का आधार बनाया गया है।

उपनिषद अध्यात्मविद्या के विविध अध्याय हैं जो विभिन्न अंत:प्रेरित ऋषियों द्वारा लिखे गए हैं। इनमें विश्व की परमसत्ता के स्वरूप, उसके अवस्थान, विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों के साथ उसके संबंध, मानवीय आत्मा में उसकी एक किरण की झलक या सूक्ष्म प्रतिबिंब की उपस्थिति आदि को विभिन्न रूपकों और प्रतीकों के रूप में वर्णित किया गया है।

सृष्टि के उद्गम एवं उसकी रचना के संबंध में गहन चिंतन तथा स्वयंफूर्त कल्पना से उपजे रूपांकन को विविध बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। अंत में कहा यह गया कि हमारी श्रेष्ठ परिकल्पना के आधार पर जो कुछ हम समझ सके, वह यह है। इसके आगे इस रहस्य को शायद परमात्मा ही जानता हो और 'शायद वह भी नहीं जानता हो।'

संक्षेप में, वेदों में इस संसार में दृश्यमान एवं प्रकट प्राकृतिक शक्तियों के स्वरूप को समझने, उन्हें अपनी कल्पनानुसार विभिन्न देवताओं का जामा पहनाकर उनकी आराधना करने, उन्हें तुष्ट करने तथा उनसे सांसारिक सफलता व संपन्नता एवं सुरक्षा पाने के प्रयत्न किए गए थे। उन तक अपनी श्रद्धा को पहुँचाने का माध्यम यज्ञों को बनाया गया था।

उपनिषदों में उन अनेक प्रयत्नों का विवरण है जो इन प्राकृतिक शक्तियों के पीछे की परमशक्ति या सृष्टि की सर्वोच्च सत्ता से साक्षात्कार करने की मनोकामना के साथ किए गए। मानवीय कल्पना, चिंतन-क्षमता, अंतर्दृष्टि की क्षमता जहाँ तक उस समय के

दार्शनिकों, मनीषियों या ऋषियों को पहुँचा सकीं उन्होंने पहुँचने का भरसक प्रयत्न किया। यही उनका तप था।

3.1.3 अद्वैत दर्शन-

वेदान्त वेदान्त की एक शाखा है। अहं ब्रह्मास्मि अद्वैत वेदांत यह भारत में उपजी हुई कई विचारधाराओं में से एक है। जिसके आदि शंकराचार्य पुरस्कर्ता थे। भारत में परब्रह्म के स्वरुप के बारे में कई विचारधाराएं हैं। जिसमें द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, केवलाद्वैत, द्वैताद्वैत ऐसी कई विचारधाराएँ हैं। जिसे आचार्य ने जिस रूप में (ब्रह्म) को देखा उसका वर्णन किया। इतनी विचारधाराएँ होने पर भी सभी यह मानते है कि भगवान ही इस सृष्टि का नियंता है। अद्वैत विचारधारा के संस्थापक शंकराचार्य है उसे शांकराद्वैत भी कहा जाता है। शंकराचार्य मानते हैं कि संसार में ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव और ब्रह्म अलग नही हैं। जीव केवल अज्ञान के कारण ही ब्रह्म को नहीं जान पाता जबकि ब्रह्म तो उसके ही अंदर विराजमान है। उन्होंने अपने ब्रह्मसूत्र में "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा कहकर अद्वैत सिद्धांत बताया है। अद्वैत सिद्धांत चराचर सृष्टि में भी व्याप्त है। जब पैर में काँटा चुभता है तब आखों से पानी आता है और हाथ काँटा निकालने के लिए जाता है ये अद्वैत का एक उत्तम उदाहरण है।

शिक्षा का भारतीयकरण-हम ज्ञान को अलग अलग करके नहीं अपितु प्रत्येक ज्ञान को दूसरे ज्ञान के पूरक स्वरूप देखते हैं। हमारे ज्ञानप्राप्ति का मूल उद्देश्य ही "स्वयम मोक्षाय एवम् जगत हिताय" हैं। उपरोक्त सिद्धान्त मूल भारतीय सिद्धान्त हैं। इन सिद्धान्तों को अगर आधार बनाकर भारतीय शिक्षा व्यवस्था बनाई जाय तो ये हो गया भारतीय शिक्षा का भारतीयकरण।

समतामूलक और समावेशी समाज की स्थापना- किसी भी समाज में निरंतर चलने वाली एक सामाजिक प्रक्रिया है जिससे मनुष्य की आंतरिक शक्तियों का विकास एवम् व्यवहार परिष्कृत होता है।नई शिक्षा नीति के द्वारा ज्ञान एवम् कौशल में वृद्धि कर मनुष्य को योग्य नागरिक बनाना,प्रगतिशील समृद्धि,सृजनशील,नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण एक नए समावेशी भारत की कल्पना को साकार करना है जो अपने गौरवशाली इतिहास को पुनर्जीवित करने का स्वप्न दिखाती है।समावेशी शिक्षा जो प्रतिभाशाली,कमजोर औसत हर वर्ग के विद्यार्थियों के लिए होगी। जहां किसी भी धर्म, जाति ,संप्रदाय ,भाषा , संस्कृति, लिंग आदि से ऊपर उठकर समाज के आखिरी व्यक्ति तक को सम्मानपूर्वक जीवन जीने और राष्ट्र निर्माण में भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु निश्चित अवसरों की भी समानता होगी।यह पूर्णतया लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर क्रियान्वित करने से समाज का कोई तबका अपने आप को भाग्यशाली ही समझेंगे।

34वर्षों से चली आ रही भारतीय शिक्षा नीति अंततःआमूल चूल परिवर्तन कर एक नई शिक्षा नीति हमारे सामने आयी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति को अंक परक की बजाय ज्ञान परक बनाने के सार्थक प्रयास किए गए है।हमारी नई शिक्षा नीति चार स्तंभों पर आधारित है-स्कूली शिक्षा,उच्च शिक्षा,प्रशासन या नियमन तथा शोध। इन सभी स्तंभों से जुड़े कई महत्व पूर्ण बिंदु भी है जो इस नई शिक्षा नीति को खास बनाते है,जिसके अन्तर्गत हर विद्यार्थी की विशिष्ट क्षमताओं की पहचान कर उसके विकास के लिए प्रयास,बुनियादी साक्षरता पर जोर,लचीलापन,बहुविषयक शिक्षा,तथा शोध पर विशेष ध्यान,रचनात्मकता को बढ़ावा, भाषा की शक्ति को प्रोत्साहन,नैतिकता तथा मानवीय मूल्यों पर ध्यान,जीवन कौशल,शिक्षकों की भर्ती और निरंतर विकास पर पूरा ध्यान,शैक्षिक प्रणाली में अखंडता ,पारदर्शिता और संसाधन कुशलता,उत्कृष्ट स्तर का शोध साथ ही भारतीय गौरव और जड़ों से बधे रहने की भावना नई शिक्षा नीति का मूल सिद्धांत है।